

क्या शिक्षा एक सांस्कृतिक कार्यवाही है?

निरंजन सहाय

आलोचनात्मक चिन्तन और शिक्षा का गहरा रिश्ता है। समाज में मौजूद आलोचनात्मक चिन्तन के अवसर शिक्षा की संस्कृति को मजबूती प्रदान करते हैं। हाल की कुछ घटनाएं संकेत करती हैं कि समाज में आलोचनात्मक चिन्तन को निशाना बनाया जा रहा है। यह लेख ऐसी घटनाओं और शिक्षा के संबंध को जोड़कर देखने का प्रयास करता है।

“लो कतंत्र में नागरिकता की परिभाषा में कई बौद्धिक, सामाजिक व नैतिक गुण शामिल होते हैं: एक लोकतांत्रिक नागरिक में सच को झूठ से अलग छंटने, प्रचार से तथ्य अलग करने, धर्मांधता और पूर्वाग्रहों के खतरनाक आकर्षण को अस्वीकार करने की समझ व बौद्धिक क्षमता होनी चाहिए... वह न तो पुराने को इसलिए नकारे क्योंकि वह पुराना है, न ही नए को इसलिए स्वीकार करे क्योंकि वह नया है बल्कि उसे निष्पक्ष रूप से दोनों को परखना चाहिए और साहस से उसको नकार देना चाहिए जो न्याय व प्रगति के बलों को अवरुद्ध करता हो...” (माध्यमिक शिक्षा आयोग, 1952)

शिक्षा की हर व्यवस्था की जड़ें एक विशिष्ट संस्कृति में होती हैं। मसलन, माध्यमिक शिक्षा आयोग की रिपोर्ट भारतीय लोकतंत्र के विकास के लिए शिक्षा की संस्कृति निर्मित करने की पैरवी करती है। 1986 की राष्ट्रीय शिक्षा नीति की घोषणा है कि भारत में शिक्षा के लक्ष्य वही हैं, जो भारत के संविधान के हैं। भारत के संविधान के अनुसार देश को ऐसा गणराज्य बनाना है जो समाजवादी, पंथनिरपेक्ष तथा लोकतांत्रिक हो।

हम इस राय से सहमत हैं कि कोई समाज विभिन्न समूहों से मिलकर बना है, तब हमें यह भी याद रखना होगा कि समाज में अनेक भेद और असमानताएं भी पाई जाती हैं। कहना न होगा इनमें से अनेक असमानताओं को बनाए रखने के लिए वर्चस्ववादी समूह सक्रिय रहते हैं। ऐसी सक्रियता के अनेक जुमलों में एक जुमला है- आहत भावना। हाल ही में आहत भावना ने अपना लक्ष्य बनाया है कांचा इलैया को। ऐसे में यह जानना जरूरी है कि समाज वैज्ञानिक और अंग्रेजी, तेलुगु लेखक कांचा इलैया से खतरा किसे है? हालिया तस्वीरों ने कन्नड़ लेखक अनन्तमूर्ति, तमिल लेखक पेरुमल मुरुगन की फेहरिश्त में यह नाम जोड़ा है। संभव है कि हम प्रो. कांचा इलैया से सहमत हों, यह भी संभव है कि हम उनसे असहमत हों

लेकिन हम इससे इनकार नहीं कर सकते कि उन्हें धार्मिक कथाओं, स्थापनाओं एवं विचारों को समाजशास्त्रीय और आलोचनात्मक नजरिए से विश्लेषित करने का संवैधानिक अधिकार है। मशहूर इतिहासकार और विचारक दिलीप सिमॉन ने अपने ब्लॉग में लिखा, “यदि इससे किसी की भावना आहत होती है तो यह बेहद बुरा है। उन्हें यह समझना होगा कि हम ऐसी स्थितियों में बेहद क्षुब्ध हैं, जहां उन लोगों द्वारा लगातार धमकियां दी जा रही हैं। हम सभी को ऐसे माहौल में रहने के लिए बाध्य होना पड़ रहा है जहां उन लोगों ने एक ऐसे असहिष्णु माहौल को पैदा कर दिया है जहां उन्हें ईश्वर से ज्यादा खुद की ताकत में भरोसा है। किसी धर्म की इज्जत करना एक बात है लेकिन सभी को धार्मिक बनने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता। धर्म की समझ की फिर-फिर पुनर्चना करने, उन पर संदेह प्रकट करने का लोगों को जनतांत्रिक अधिकार है। हमारा संविधान आलोचनात्मक नजरिए से किसी भी विषय को परखने की आजादी देता है। यदि इस अधिकार की आश्वस्ति नहीं तब लोकतांत्रिक राजनीति का दावा निरर्थक है।”¹

सवाल यह भी है कि ऐसे असहिष्णु माहौल की रचना करने के लिए क्या एक विशेष तरह की शिक्षायी नीतियों की जमीन तैयार नहीं की जाती रही है? बरास्ते कांचा इलैया यह समझने का प्रयास करें कि तथाकथित आहत भावना आखिर क्यों ऐसे विचार पर आक्रमण करती है, जो सर्वसत्तावादी संस्कृति के मसूबों को विश्लेषित करने का नजरिया देता है? दलित शिक्षा बनाम आधिपत्यवादी शिक्षा के कांचा इलैया प्रसंग को समझने से पहले हालिया घटनाक्रम पर एक नजर डालना मुनासिब होगा।

‘ईश्वर लोकतंत्रवादी है न’ बनाम आहत भावना

हैदराबाद से प्रकाशित होने वाले तेलुगु अखबार ‘आंध्र ज्योति’ में मशहूर समाज वैज्ञानिक कांचा इलैया ने एक लेख लिखा ‘देवडू प्रजासाम्य वडा कडू’ अर्थात् ‘ईश्वर लोकतंत्रवादी है न’? इस लेख के छपने के बाद विश्व हिन्दू परिषद् के कार्यकर्ताओं ने हैदराबाद के सुलतान बाजार थाने में शिकायत दर्ज कराई कि उक्त लेख से उनकी धार्मिक भावनाएं आहत हुई हैं, लिहाजा पुलिस कांचा इलैया के खिलाफ प्राथमिकी दर्ज करे। इस शिकायत के आलोक में इंस्पेक्टर पी. शिव शंकर ने वरिष्ठ सहायक लोक अभियोजक से विधिक राय मांगी। उनकी राय के मुताबिक धारा 301(ए) और धारा 295(ए) के अंतर्गत पूरे प्रकरण में मुकद्दमा दर्ज किया जा सकता है। यह अभियोग उस व्यक्ति पर कारगर होता है जो जान-बूझकर धार्मिक भावनाएं भड़काता है। दुर्भावनापूर्ण कृत्य द्वारा समुदायों के बीच धार्मिकता को आधार बनाकर शत्रुताएं बढ़ाता है। अंततः 15 मई को कांचा इलैया, आंध्र ज्योति अखबार के प्रबंधन, संपादक और प्रकाशक के खिलाफ प्राथमिकी दर्ज की गई। मामला अभी विचाराधीन है। इस पूरे मसले पर विचार करते हुए प्रसंगवश माननीय सर्वोच्च न्यायालय के एक हालिया फैसले की याद आ रही है जिसमें संविधान प्रदत्त अभिव्यक्ति की आजादी के मसले पर गत 24 मार्च को सर्वोच्च न्यायालय ने अपनी पक्षधरता को प्रकट करते हुए सूचना प्रौद्योगिकी की धारा-66‘ए’ को असंवैधानिक करार दिया है।² यह जानना जरूरी है कि आखिर कांचा इलैया ने उस लेख में क्या कह दिया कि हंगामा बरपा हो गया।

इस लेख में ईश्वर के तीन रूपों की बात की गई है। एक वह जो अमूर्त है, निराकार है, जिसकी व्याप्ति अनंत तक है। एक वह जो नबी थे पर जिन्हें ईश्वर में रूपांतरित कर दिया गया। एक वह जिनकी मनुष्य रूप में कल्पना की गई। प्रो. इलैया का दावा है इनमें प्रत्येक अपनी-अपनी विशेषताओं के द्वारा वैचारिक संदेश भी देते हैं। इलैया ने अपने विश्लेषण द्वारा यह बताया है कि अमूर्त ईश्वर की अवधारणा में जनतांत्रिक खूबियां हैं। वे यह बताते हैं कि बाइबिल और कुरआन में ईश्वर की जो अवधारणा प्रस्तुत की गई है, उसके मुताबिक ईश्वर ने सभी मनुष्यों को बराबर बनाया है। इस ईश्वर की दूसरी जनतांत्रिक विशेषता है, ईश्वर ने मनुष्य को सभी प्राणियों (चाहे वह गाय ही क्यों न हो) से श्रेष्ठ बनाया है। जीसस क्राइस्ट और पैगंबर मुहम्मद दोनों की ईश्वर संबंधी अवधारणा ऐसे संदेश देती है। दूसरे तरह के धर्म की अवधारणा जीसस क्राइस्ट और बुद्ध के रूप में नजर आती है, जिसमें उन्हें ईश्वर का दर्जा दिया गया है। दोनों हिंसा के खिलाफ हैं। दोनों की शिक्षाएं मनुष्य की सभी प्रजातियों में समानता की पक्षधरता का संदेश देती

हैं। वे स्त्री-पुरुष के रिश्तों में बदलाव के लिए ऐसे नियमों के पक्षधर हैं जिनसे जनतांत्रिक संदेश निहित हों। वे जीसस क्राइस्ट के दर्शन को जनतांत्रिक सोच के मसले पर बुद्ध से आगे का दर्शन ठहराते हैं। उनका मानना है जीसस ने स्मार्तो (वहां के दलितों), महिलाओं, भद्र पुरुषों-महिलाओं, गुलामों, यौनकर्मियों सबके बारे में बुद्ध से आगे बढ़कर विचार किया। वह अकेले ऐसे हैं जिन्होंने साफ तौर पर राज्य और धर्म को अलग करने के नजरिए को अनिवार्य माना। प्रो. इलैया का मानना है कि जो देश ईसाई धर्म को मानते हैं उन्हें जीसस की शिक्षाओं से जनतांत्रिक मूल्यों को विकसित करने में आसानी हुई। ठीक इसके दूसरे ध्रुव पर पैगंबर मुहम्मद हैं, जिन्होंने यद्यपि सभी मनुष्यों को बराबर मानने का संदेश दिया पर उनके जीवन काल और उनके उत्तराधिकारी चार खलीफाओं तक राज्य और धर्म के रिश्ते को अलग नहीं माना गया। ऐसा संभव है कि इन्हीं कारणों से अनेक मुस्लिम देशों में तानाशाहों ने जनतांत्रिक परंपराओं को कमजोर किया।

इसके बाद प्रो. कांचा इलैया ने ईश्वर के तीसरे रूप की चर्चा की है, जिसमें ईश्वर की कल्पना मानव रूप में की गई है। पूरे विश्व में यह केवल भारत में है। इस अवधारणा ने दो तरह की धार्मिक परंपराओं को संभव किया। विष्णु और उनके अवतार तथा शिव और उनकी दिव्यता। शैव परंपरा का असर समकालीन भारत पर प्रभाव न के बराबर है। वस्तुतः सामाजिक-राजनैतिक सिद्धांतों पर इस स्कूल का कोई प्रभाव नहीं पड़ा। इसके विपरीत भारत के राजनीतिक दलों और संस्थाओं पर वैष्णव स्कूल और उनके देवताओं का गहरा प्रभाव पड़ा। इलैया राय देते हैं, यह ज्यादा जरूरी है कि हम इस बात का अध्ययन करें कि वैष्णव परंपरा का भारतीय समाज पर क्या प्रभाव पड़ा? विष्णु के अवतार राम और कृष्ण के वृत्त में रची कथाओं और कल्पनाओं में हिंसा और हथियारबंदी से संलग्नता दिखाई पड़ती है। उदाहरण के लिए, चक्र, धनुष-तीर एवं त्रिशूल के प्रयोग। मानवीय संबंधों पर इस अवधारणा का गहरा प्रभाव पड़ा।

जातिगत अस्मिता के निर्माण का मसला

इलैया का आरोप है, इन कथाओं की अंतर्वस्तु ने लोकतंत्र के प्रतिपक्ष की प्रक्रिया संभव की। ईश्वर की जड़ें क्षत्रिय जाति में पहचानी गईं, जिसने अलोकतांत्रिक प्रक्रिया का निर्माण किया। आलेख का अंत इस स्थापना से किया गया है कि यदि ईश्वर की इस परिकल्पना में कोई व्यक्ति यकीन करता है तब उसका भरोसा लोकतांत्रिक प्रक्रिया में नहीं होगा फिर वह जिस लोकतंत्र में यकीन रखेगा उसमें वह यह व्याख्यायित करने में सफल नहीं होगा कि ऐसे किसी ईश्वर की परिकल्पना क्यों हुई जिसका यकीन हिंसा में है और जो स्त्री विरोधी है। उनका कहना है कि, “मैं वैचारिक पुनर्निर्माण की प्रक्रिया में था, मेरा उद्देश्य भारतीय समाज में निहित कतिपय असभ्य आचरणों के स्रोतों पर पुनर्विचार था।”³

इलैया के पक्ष में छिहत्तर तेलुगु लेखकों, कलाकारों और बुद्धिजीवियों का समूह सामने आया। उनके द्वारा प्रो. इलैया के पक्ष में 27 मई, 2015 को आंध्र ज्योति अखबार में संयुक्त वक्तव्य जारी किया गया। वक्तव्य के एक अंश के मुताबिक, “प्रो. इलैया के आलेख ने लोकतांत्रिक मूल्यों के पक्ष में व्याख्या प्रस्तुत की है, जिसमें देश की आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक भविष्य की राह में आने वाले नकारात्मक आध्यात्मिक मूल्यों की पहचान की गई है। वक्तव्य का समाहार है, आज दुनिया में प्रो. इलैया के विचारों और लेखन से ताजगी का अनुभव हो रहा है जबकि सांप्रदायिक ताकतें इन वैचारिक चिनगारियों को समझने में असमर्थ हैं।”⁴

मसला अभिव्यक्ति की आजादी और शिक्षायी संस्कृति का

सत्ता की राजनीति और अभिव्यक्ति की आजादी से शिक्षायी प्रक्रियाओं के सरोकार गहरे हैं। भारतीय शिक्षा के वृत्त में दलित आदिवासी बहुजन की स्थिति क्या रही, इस पर अनेक शोध हुए हैं। कांचा इलैया की धर्म, ईश्वर, उनसे संबंधित आख्यान और समकालीन राजनीति के इस हालिया लेख का सिरा दलित बहुजन के व्यापक शिक्षायी वृत्त से जुड़ता है। बकौल इलैया, “कहानियों और पाठों (पाठ्यक्रमों-पाठ्यपुस्तकों) में हमने उन आदर्श आदमियों और

औरतों के बारे में और उस संस्कृति के बारे में पढ़ा जो हमसे काफी भिन्न थी। ...पाठ्यपुस्तकों में वही व्यक्ति ज्ञानी था जो वेदों के बारे में जानता था। साहसी आदमी वही था जो दुश्मनों का सफाया कर सकता था, भले ही ये दुश्मन उसके अपने मित्र या संबंधी ही क्यों न हों! 'रामायण' और 'महाभारत' में ज्ञान और बहादुरी को इन्हीं मूल्यों में व्याख्यायित किया गया है। लेकिन हमारी असली जिन्दगी में वही आदमी ज्ञानी माना जाता था जो सामाजिक क्रियाकलापों की समझ रखता है। यानी, जो भेंड़ पालन जानता हो, खेती-बाड़ी और रस्सी बनाना जानता हो, जो पशुओं और आदमियों की बीमारियों के बारे में जानता हो और उनका इलाज कर सकता हो। बहादुर आदमी वह है जो बाघ, शेर, सांप और जंगली भैंसों से लड़ाई कर सकता हो, जो घने जंगलों में यात्रा कर सकता हो, तैर सकता हो और खोई हुई बकरियां और भेड़ों को खोज सकता हो।⁵ इस लंबे उद्धरण का यहां सिर्फ इतना सा उद्देश्य है कि हम यह बखूबी समझ सकें कि भारत जैसे बहुलतावादी लोकतंत्र में अनेक तरह की शैक्षिक परंपराएं रही हैं। इनमें से किसी एक के वर्चस्व को स्थापित करना इकहरे अस्मिता निर्माण में साझीदार होना होगा। इससे राजनैतिक अभियानों को तो रचा जा सकता है, पर भारत की संश्लिष्ट सांस्कृतिक अस्मिता को नकारने का मतलब है, राष्ट्र के रूप में अपनी असफलता की राह को अख्तियार करना।

हमारी शिक्षा व्यवस्था में ऐसे अनेक उदाहरण मिलते हैं जो सांस्कृतिक बहुलता को तरजीह नहीं देते। पाठ्यपुस्तकों में इस बहुलता के नकार पर कांचा इलैया का मानना है, "विद्यालय की पहली कक्षाओं से महाविद्यालय तक हमारी तेलुगु किताबें इन हिन्दू कथाओं से भरी पड़ी थीं। कालिदास हमारे लिए उसी तरह अजनबी थे जैसे शेक्सपियर का नाम। पाठ्यपुस्तकों की भाषा वैसी नहीं थी जैसी हमारा समुदाय बोलता था। यहां तक कि कुछ प्रारम्भिक, मूल शब्द भी भिन्न थे। पाठ्यपुस्तक की तेलुगु ब्राह्मणों की तेलुगु थी, जबकि हम उत्पादन आधारित संप्रेषक तेलुगु में आदी थे।" (कांचा इलैया, अनुसूचित जाति और जनजाति के बच्चों की समस्याएं, राष्ट्रीय फोकस समूह का आधार पत्र, एन.सी.ई.आर.टी)

कहना ना होगा, कांचा इलैया की चिंताएं लोकतांत्रिक हैं। उनके हालिया लेख को इस नजरिए से भी देखा जाना चाहिए। अनेक अध्ययन इस बात की पुष्टि करते हैं कि विकास प्रक्रिया से बाहर छूट गए समूहों के साझे अनुभवों और विश्लेषण को शिक्षायी अवधारणा का अंग बनाए बिना किसी राष्ट्रीय शिक्षा नीति का निर्माण संभव नहीं। राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005 और राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद् का अनुसूचित जाति और जनजाति के बच्चों की समस्याओं पर आधारित आधार पत्र में इस बात की मुखर अभिव्यक्ति है। बहुलता की शिक्षायी संस्कृति पर आधार पत्र की घोषणा को यहां उद्धृत करना मौजूं होगा। "बड़े सार्वजनिक फायदों की ओर अग्रसर बेशकीमती सांस्कृतिक पहचान का पोषण करने के लिए पाठ्यचर्या और शिक्षणशास्त्रीय तौर-तरीकों के मूल में समीक्षात्मक बहुसंस्कृतिवाद और समीक्षात्मक सिद्धांत का होना अत्यावश्यक है। अनुसूचित जाति और जनजाति समुदायों के प्रति समझ और संवेदनशीलता प्राप्त करने के लिए शिक्षक शिक्षा की पाठ्यचर्या के उद्देश्यों को सैद्धान्तिकता एवं अनुभवजन्य अधिगम पर जोर देते हुए दोबारा बनाने की जरूरत है।...विद्यालयी पाठ्यचर्या और शिक्षण पद्धति को हर बच्चे के अधिगम और उसके मुक्त, सर्जनात्मक एवं बहुआयामी विकास का अवसर प्रदान करना चाहिए। अनुसूचित जाति अथवा अनुसूचित जनजाति के बच्चे जो संस्कार और अनुभव विद्यालय तक लाते हैं उसे सभी बच्चों के लिए सार्थक शिक्षा के उद्देश्य की पूर्ति के लिए समतावादी शिक्षण अधिगम प्रक्रिया का मुख्य भाग होना आवश्यक है।"⁶ कहना न होगा एक अर्थ में यह आश्वस्त करने वाला वाक्य है कि हमारे समाज और शिक्षा संसार में प्रतिगामी व्याख्याओं और राजनीति के समानान्तर प्रतिपक्ष की आवाजें पुरजोर तरीके से सक्रिय हैं।

यह संभव है कि आप कांचा इलैया के इस विश्लेषण से असहमत हों लेकिन लोकतंत्र अपने विचारों की अभिव्यक्ति की आजादी तो देता ही है। कोई भी लोकतंत्र वैचारिक विविधता का समर्थन करता है। शिक्षा भी आलोचनात्मक विवेक के विकास को प्रोत्साहन देती है। यदि शिक्षा से यह उम्मीद नहीं है तो फिर शिक्षा भी यथास्थिति को बनाए रखने में मदद करेगी। अतः शिक्षा से सरोकार रखने वाले लोगों और शिक्षाकर्मियों को भी विचार-विमर्श, विचार-भेद

रखने की संस्कृति के लिए स्थान बनाए रखने में योगदान करना होगा। तभी हम असहिष्णुता की संस्कृति से अपने लोकतंत्र को बचाए रख पाएंगे। ♦

संदर्भ

1. Dilip Simon: <http://scroll.in/article/731416/case-filed-against-social-scientist-kancha-ilaiiah-for-asking-is-god-a-democrate>.
2. रवि भूषण, 30 मार्च 2015 प्रभात खबर, दिल्ली -21वीं सदी के आरंभ में राजग के कार्यकाल में सूचना एवं प्रौद्योगिकी अधिनियम लागू किया गया था। आठ वर्ष बाद (2008 में) संप्रग-2 ने इसमें संशोधन कर धारा 66-ए को शामिल किया, जिसकी अधिसूचना फरवरी, 2009 में जारी हुई। प्रोफेसर हों या कार्टूनिस्ट, लड़कियां हों या लेखक, व्यापारी हों या कर्मचारी, किशोर हों या वयस्क अर्धे सभी सूचना प्रौद्योगिकी (संशोधित) बिल, 2008 की धारा 66-ए की गिरफ्त में आए। इस धारा के खिलाफ 21 याचिकाएं दायर की गईं, जिनमें पहली याचिका कानून की छात्रा श्रेया सिंघल ने 2012 में सुप्रीम कोर्ट में दायर की थी। बाल ठाकरे के निधन के बाद मुंबई के विरोध में महाराष्ट्र की पालघर की दो लड़कियों शहीन हाड़ा और श्रीनिवासन ने फेसबुक पर पोस्ट डाला था, तब इन दोनों के खिलाफ यह धारा लगाई गई थी। श्रेया सिंघल ने इस धारा को चुनौती दी थी। गत 24 मार्च को सुप्रीम कोर्ट के न्यायमूर्ति जे. चेलमेश्वर और आर. एफ. नरीमन की पीठ ने इससे संबंधित सभी जनहित याचिकाओं पर दिए फैसले में अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता को आधारभूत मूल्य घोषित करते हुए इस धारा को निरस्त कर दिया।
आदेश में धारा 66-ए के तीन शब्दों- 'चिढ़ाने वाला', 'असहज करने वाला' और 'बेहद अपमानजनक' को स्पष्ट कहा गया। साथ ही 'बहस', 'सलाह' और 'भड़काने' को एक कोटि में शामिल न कर, इन तीनों में अंतर स्पष्ट किया गया। धारा 66-ए में 'चिढ़ाने', 'असुविधा', 'खतरा' और 'अड़ंगा' जैसे शब्द अपरिभाषित थे। इनकी गलत व्याख्याएं सही उद्देश्यों के विरुद्ध संभव थीं। संप्रग-2 के समय इस संशोधित कानून को बिना किसी बहस के संसद से पारित किया गया था। पीठ ने राजग सरकार द्वारा दिए गए इस आश्वासन को, कि कानून का दुरुपयोग नहीं होने दिया जाएगा, स्वीकार नहीं किया, क्योंकि सरकारें आती-जाती रहेंगी और कोई भी सरकार यह गारंटी नहीं दे सकती कि परवर्ती सरकारें भी इसका दुरुपयोग नहीं करेंगी। प्रशासन के खिलाफ किसी प्रकार की टिप्पणी सरकारों को बर्दाश्त नहीं होती। विरोधी स्वरों को दबाने में ऐसे कानून उनके मददगार होते हैं। इंटरनेट और सोशल मीडिया के आज के दौर में इस कानून (धारा 66-ए) के जरिए किसी को भी दंडित और गिरफ्तार करना आसान था। सोशल मीडिया पर असहमति प्रकट करने और आलोचना करने वालों की संख्या कहीं अधिक है। ऐसे में यह धारा अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर अंकुश लगाती थी। सर्वोच्च न्यायालय ने अपने आदेश में स्पष्ट किया है कि किसी भी लोकतंत्र में विचार और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता आधारभूत मूल्य हैं। विरोधी और अलोकप्रिय विचार खुले संवाद की संस्कृति हैं। सुप्रीम कोर्ट के आदेश में यह भी कहा गया है कि जो एक के लिए अप्रिय और अरुचिकर है, आवश्यक नहीं कि वह दूसरों के लिए भी वैसी ही हो।
3. Dilip Simon: <http://scroll.in/article/731416/case-filed-against-social-scientist-kancha-ilaiiah-for-asking-is-god-a-democrate>.
4. आंध्र ज्योति अखबार
5. कांचा इलैया 16:2003, मैं हिन्दू क्यों नहीं हूं।
6. 2010, 3-1 अनुसूचित जाती और जनजाति के बच्चों की समस्याएं राष्ट्रीय फोकस समूह का आधार पत्र, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद्, नई दिल्ली

लेखक परिचय: शिक्षा, समाज और संस्कृति के अंतर्संबंधों पर पिछले एक दशक से लेखनरत हैं। महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी में हिन्दी के एसोसिएट प्रोफेसर हैं। एनसीईआरटी दिल्ली एवं बिहार और राजस्थान सरकार के लिए विभिन्न शैक्षिक सामग्रियों का लेखन और संपादन किया है।